विषय- संस्कृत, बी॰ए॰ स्नातक (प्रतिष्ठा)

प्रथम वर्ष (प्रथम पत्र)

किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्ग मात्र)

डॉ॰ ओम प्रकाश आर्य

महाराजा कॉलेज, आरा

Scanned with CamScanner

कवि भारवि का परिचय

(अ) जीवन-परिचय–महाकवि भारवि ने अपनी एकमात्र रचना **'किरातार्जुनीयम्'** के आधार पर चिरकीर्ति उपार्जित की है। किन्तु उसके अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उनके जीवन के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि महाकवि कालिदास की भाँति ही भारवि भी अपने बारे में मौन हैं। अतः अन्तःसाक्ष्य के अभाव में बाह्य प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है। सौभाग्य से उनका नामोल्लेख 'एहोल' शिलालेख में मिलता है। इसके अतिरिक्त सन् 1924 में दक्षिण भारत से प्राप्त गद्यकाव्य **'अवन्तिसुन्दरी'** के आधार पर भारवि दण्डी के प्रपितामह थे। अवन्तिसुन्दरी के रचयिता दण्डी माने जाते हैं। इस कथा का पद्यात्मक रूपान्तर अवन्तिसुन्दरी कथासार से भी यही स्पष्ट होता है कि भारवि ही **'दामोदर'** थे, जिनकी मैत्री मेधावी राजा विष्णुवर्धन से हुई थी। इन दोनों कृतियों से प्राप्त जानकारी का सारांश इस प्रकार है–

भारत के वायव्य प्रदेश में आनन्दपुर नाम का एक नगर है। इस नगर का निवासी एक ब्राह्मण परिवार जिनका गोत्र कौशिक है, महाराष्ट्र के नासिक मण्डल (जिला) के अचलपुर ग्राम में रहना चला गया। इस परिवार के नारायण स्वामी नामक सदस्य के 'दामोदर' नाम का एक पुत्र था। यही दामोदर रवितुल्य प्रखर प्रतिभा के कारण 'भारवि' इस उपनाम से विख्यात हुआ। राजा विष्णुवर्धन के साथ भारवि कभी-कभी मृगया पर जाया करते थे। उसी समय इन्हें एक बार आमिष खाना पड़ गया। इस प्रसंग में हुए पाप के प्रायश्चित्त करने हेतु भारवि तीर्थ यात्रा करने चले गए। इसी समय 'गंग' राजघराने के तत्कालीन 'दुर्विनीत' नामक राजा से इनका परिचय हुआ। इन्हीं राजा के सान्निध्य में रहते हुए 'कांचीपुरम्' के 'सिंहविष्णु' नामक पल्लवराज की प्रशस्ति में भारवि ने एक आर्या लिखी थी, जिसका आशय इस प्रकार था–'दानवराज हिरण्यकशिपु का पर्वत-प्रायः, कठिन एवं विशाल हृदय विदीर्ण करने से जिनके नखों की प्रचण्ड शक्ति प्रकट हुई है और जो उस कारण संसार के उत्कर्ष एवं कल्याण का कारण बना। वह विष्णु भगवान् का 'नरसिंह' रूप तुम्हारी रक्षा करे।' विष्णु भगवान् की स्तुति में अपना सम्बन्ध बड़ी खूबी से वर्णन करने वाले भारवि को सिंहविष्णु परम आह्लादित होकर ससम्मान अपने राजदरबार में ले आए। इन्हीं पल्लवराज सिंहविष्णु के सान्निध्य में रहते हुए भारवि को तीन पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। इन तीन पुत्रों में 'मनोरथ' नामक पुत्र को 'वीरदत्त' नाम का पुत्र हुआ। इस वीरदत्त की पत्नी का नाम गौरी था। वीरदत्त और गौरी से सुप्रसिद्ध दण्डी कवि का जन्म हुआ। कुछ विद्वानों का मत है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह नहीं थे, अपितु प्रपितामह के मित्र थे। उनका मत है कि 'दामोदर' का उपनाम भारवि नहीं था, अपितु 'भारवि' ने 'दामोदर' को राजा विष्णुवर्धन की सभा में स्थान दिलाया था। अस्तु, जो भी हो इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि वे विष्णुवर्धन और सिंहविष्णु के समकालीन थे। इनका जन्म कुशिक गोत्र में हुआ था, पिता का नाम नारायण स्वामी था। विष्णुवर्धन से उनकी भेंट हुई। पल्लव-नरेश सिंहविष्णु द्वारा उनका सत्कार किया गया। यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वे बीस वर्ष के थे।

विभिन्न विद्वानों ने महाकवि भारवि को दक्षिण भारतीय माना है। प्रो. आर.आर. भागवत ने 'किरातार्जुनीयम्' के निम्न श्लोक को उदाहरणस्वरूप रखा है–

उरसि शूलभृतः प्रहिता मुहुः प्रतिहतिं ययुरर्जुनमुष्टयः
भृशरया इव सह्यमहीभृतः पृथुनि रोधसि सिन्धुमहोदधिः।।

"भगवान् शंकर के सीने पर बार-बार प्रहार किए गए अर्जुन की मुष्टि अर्थात् मुक्के उसी प्रकार निष्फल हुए, जिस प्रकार सह्य पर्वत के तट पर वेग के साथ टकराने वाली समुद्र की विशाल लहरें विफल हो जाती हैं।" 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर एवं अन्य स्थलों के आधार पर भी भारवि दाक्षिणात्य ही सिद्ध होते हैं। वे नासिक के पास अचलपुर ग्राम के रहने वाले थे। 'अवन्तिसुन्दरी कथा' के आधार पर भारवि महाकवि दण्डी के पूर्वज थे और दण्डी के वंशधर बाद में वाशिम, हरिद्वार, वाराणसी, एवं ग्वालियर में जा बसे। उनके वंशज आज भी विद्यमान हैं। वाराणसी के ब्रह्मघाट पर सुप्रसिद्ध वेदपाठी ब्राह्मण स्व. रामचन्द्र बालमुकुन्द भट्ट वाशिमकर का ब्रह्मघाट स्थित भवन 'दण्डी-भवन' होने से इसका स्थायी प्रमाण हैं इनका गौत्र भी कौशिक है। वंशधरों के आधार पर भारवि शुक्लयजुशाखीय ब्राह्मण थे। अवन्तिसुन्दरी में वर्णित आनन्दपुर गुजरात का वर्तमान 'आणन्द'

Scanned with CamScanner

(बड़ौदा और अहमदाबाद के मध्य में स्थित) है तथा नासिकपुर अचलपुर आज का पूर्व मध्यप्रदेश स्थित एलिचपुर समझा जाता है। भारवि शिवभक्त थे-ऐसा उनके अपने महाकाव्य तथा बाह्य प्रमाणों से भी सिद्ध होता है।

(ब) स्थितिकाल- महाकवि भारवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में अपनी रचना में कुछ भी संकेत नहीं दिया है। अतः उनकी कृति से उनका जीवन काल ज्ञात नहीं होता। तथापि कुछ बहिरंग प्रमाणों के आधार पर अवश्य उनका समय निर्धारित किया जा सकता है।

दक्षिण के चालुक्यवंशीय नरेश पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल शिलालेख में भारवि के साथ कालिदास का भी उल्लेख है। वह प्रशस्ति पुलकेशी के आश्रित 'रविकीर्त्ति' नामक किसी जैन कवि द्वारा रचित है। वह कवित्व में अपने को भारवि और कालिदास के समान मानता है। शिलालेख का समय उसमें 556 शकाब्द अर्थात् 634 ई. दिया हुआ है। अतः विद्वानों की मान्यता है कि 634 ई. तक भारवि इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उनका नाम शिलालेख में कवि कुलगुरु कालिदास के साथ लिखा जा सके। अतः उनका स्थितिकाल अवश्य ही 634 ई. से सौ वर्ष पूर्व का रहा होगा।

भारवि का समय निर्धारण करने में उनके समय में उपस्थित राजाओं का स्थितिकाल भी अत्यधिक सहायक है। उनके समकालीन राजा थे–विष्णुवर्धन, दुर्विनीत तथा पल्लव नरेश सिंहविष्णु जिनकी प्रशस्ति में स्वयं भारवि ने 'आर्या' छन्द की रचना की थी। विष्णुवर्धन को इतिहासकार पुलकेशिन् द्वितीय का छोटा भाई मानते हैं, जिसने सेनापति के रूप में हर्षवर्धन को पराजित किया था। वह युवराज था और उसने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य-वंश की स्थापना 615 में की थी। इस आधार पर भारवि 615 ई. के आसपास के व्यक्ति थे।

उनका समकालीन नरेश दुर्विनीत कोङ्कणी के गंगनरेश अविनीत का पुत्र था। उसने बृहत्कथा संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' नाम से किया और 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के पन्द्रहवें सर्ग पर टीका लिखी। दुर्विनीत पल्लव नरेश सिंहविष्णु का समकालीन था। 'अवन्तिसुन्दरी' के आधार पर काञ्चीनरेश सिंहविष्णु का शासनकाल 575 से 600 ई. के बीच है। दुर्विनीत का समय 580 माना जाता है। सिंहविष्णु से भेंट होने के समय महाकवि भारवि 20 वर्ष के थे। इस प्रकार भारवि का समय छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है।

एतदतिरिक्त जयादित्य वामन-कृत काशिका में पाणिनि के सूत्र 1-3-23 की वृत्ति में **"संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य:"**–किरातार्जुनीयम् 3/14 को उदाहरण रूप में उल्लिखित किया गया है। 'काशिका' का रचना काल 660 ई. माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जयादित्य के समय तक भारवि की रचना को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी। यदि इस प्रसिद्धि का समय सौ वर्ष माना जाए तो भी उनका स्थितिकाल 560 ई. के लगभग ही सिद्ध होता है। उधर 'एहोल' के शिलालेख, जिसका समय 634 ई. है, से भी यही सिद्ध होता है कि भारवि 634 ई. से लगभग 80-100 साल पूर्व हुए होंगे। कविवर माघ पर महाकवि भारवि का प्रभाव स्पष्टतया परिलक्षित होता है। अतः भारवि माघ से पूर्ववर्ती थे। इसलिए इन सभी साक्ष्यों के आधार पर उनका समय 550-600 ई. के लगभग माना जा सकता है।

(स) व्यक्तित्व- महाकवि भारवि के जीवन के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव उनके व्यक्तित्व को स्पष्टतया हमारे समक्ष नहीं रखने देता। उनके व्यक्तित्व को जानने के दो ही साधन हैं–

1. उनके विषय में प्रचलित किंवदन्तियाँ, तथा
2. उनकी कृति के आधार पर उनके व्यक्तित्व का दर्शन।

प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर वे एक अभिमानी विद्वान् कवि थे। उनके पिता को उनका अभिमान पसन्द नहीं था और वे चाहते थे कि कहीं अभिमानवश शास्त्र-पारायण छोड़कर उनका पुत्र विद्वत्ता न खो बैठे। अतः वे समय-समय पर भारवि की भर्त्सना किया करते थे। सभाओं में अपमानित भारवि अपने पिता के इतने विरुद्ध हो गये थे कि एक बार रात्रि को छत पर जाकर बैठ गये और पास में एक बड़ा-सा पत्थर रख लिया, जिससे अवसर पाकर अपने पिता के सिर पर गिराकर उनकी हत्या कर सके। वहाँ बैठे हुए अपने माता-पिता के वार्तालाप को सुनकर उनकी आँखें खुल गईं। भारवि को यह जानकर ग्लानि अनुभव हुई कि उनके पिता पीछे से एकमात्र पुत्र की यशःकीर्ति की शुभ्रता व अद्वितीय विद्वत्ता की प्रशंसा करते हैं और उनके शास्त्र-चिन्तन के परित्याग को नहीं चाहते। इसका भारवि ने 12 वर्ष ससुराल में गुजार कर भयंकर प्रायश्चित्त किया।

Scanned with CamScanner

इनके पद्य "**सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्**" के विषय में भी श्रेष्ठी तथा राजा वगैरह की दन्तकथाएँ विद्वत्समाज में प्रचलित हैं। महाकवि भारवि के व्यक्तित्व का सच्चा प्रदर्शन द्रौपदी, भीम तथा युधिष्ठिर की उक्तियों, किरातदूत तथा अर्जुन की उक्ति-प्रत्युक्तियों में होता है। भारवि राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। वे रसिक नहीं हैं, किन्तु कामशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। शृंगार के कलापक्ष के कवि भारवि प्रणयकला के कवि माने जाते हैं, जबकि कालिदास प्रणय के कवि हैं। इसके अतिरिक्त छन्दालंकारों का ज्ञान भी सर्वमान्य दृष्टिगत होता है। भारवि बहुत ही स्पष्टवादी व्यक्ति परिलक्षित होते हैं, उन्हें किसी से लागलपेट नहीं लगता। वे कहते हैं- "**न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः।**" (कि. 2/2)। वे हितकारी वचन कहने में अधिक विश्वास रखते हैं, भले ही उसमें माधुर्य हो या न हो-"**हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः।**" (कि. 1/4)। वे अपने आश्रयदाता को उचित शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं-"**स किंसखा साधु न शास्ति योऽधिपम्।**" (कि. 1/5)। वे गुणार्जन को जीवन का लक्ष्य मानते थे-"**गुरुतां नयन्ति हि गुणा न संहतिः।**" (कि. 12/10)। वे जैसे के साथ तैसा व्यवहार करना ही उचित समझते हैं-"**व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।**" (कि. 1/30)। वे स्वाभिमान को जीवन का अंग समझते हैं-"**जन्मिनो मानहीनस्य तृणस्य च समा गतिः।**" (कि. 11/59)। जल्दबाजी के विरुद्ध महाकवि भारवि के विचार उनके सुप्रसिद्ध पद्य में सुस्पष्ट हैं-

"**सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।**
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।" (कि. 2/30)

महाकवि भारवि की एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में अभिव्यक्त विचारों के आधार पर उनके व्यक्तित्व की कल्पना करने का प्रयास आनुमानिक है। इस आधार पर रचनाकार कवि के व्यक्तित्व की परिकल्पना करने से 'चौरपञ्चाशिका' और 'मृच्छकटिकम्' के रचनाकार कवियों के साथ न्याय नहीं हो पायेगा। कवि क्रान्तद्रष्टा होता है, वह अपने कवित्व के बल से सर्वत्र गतिमान् होता है, अतः काव्य में अभिव्यक्त विचार पूर्णतया उसके व्यक्तित्व बोधक नहीं माने जा सकते और न ही दन्तकथाओं पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner